संकल्प–शक्ति

इस सृष्टि की रचना जिसने की है, उसी ने इसका संतुलन बनाये रखने की जिम्मेदारी भी उठा रखी है। वह करुणानिधान बनकर महान आत्माओं को सहयोग देने के लिये सदैव आतुर रहते हैं। उसी तरह दुष्कृत्यों व दुष्प्रवृतियों को मिटाने के लिये पूरी तरह तैयार रहते हैं। ''परित्राणाय साधुनाम्'' के साथ ही ''विनाशाय च दुष्कृतानां'' की घोषणा भी उन्हीं के द्वारा की गई है।

जिस प्रकार शरीर को अच्छा भोजन व वस्त्र तो दिया जाये, किंतु मलमूत्र निष्कासन का प्रयास न किया जाये तो उसका स्वस्थ्य व आरोग्य रह पाना कठिन है, उसी प्रकार स्वस्थ्य सामाजिक व्यवस्था के लिये भी दोनो क्रम चाहिये। माली पोधों को खाद–पानी देकर बढ़ाता है वहीं अवांछनीय झाड़–झखोड़ों को उखाड़ता भी है। इसी प्रकार समाज में भी अनुचित परम्पराओं का उन्मूलन व श्रेष्ठ परम्पराओं का निर्माण आवश्यक है।

भगवान सृष्टि के संतुलन के लिये जागृत आत्माओं का उपयोग करते हैं। ऐसे व्यक्तियों का चिंतन व कार्यशैली सामान्य लोगों से भिन्न हो जाती है। हेय स्तर के नर–वानर तो लोभ–मोह की चक्की में पिसते रहते हैं, किंतु ईश्वर के प्रतिनिधि एक ही बात सोचते हैं कि, लोकहित को किस तरह पूरा किया जावे। पेट व प्रजनन का प्रश्न नर कीटकों के लिये सब कुछ हो सकता है, किंतु महान आत्मायें उसे बाल–कौतुक से ज्यादा नहीं मानती। वे अपनी जीवन सम्पदा ऐसे कार्यो में नियोजित करते हैं कि, उन्हें आत्म–संतोष, जन–कल्याण व ईश्वरीय अनुग्रह सभी कुछ मिलता रहे। इसे अपनाने के लिये उन्हें अपने पिछले कुसंस्कारों व अभ्यासों से लोहा लेना पड़ता है। अपने सत्संकल्प को प्रखर बनाना होता है। अपने व्यक्तित्व को प्रखर बनाये बिना जन–मानस में श्रद्धा का संचार नहीं हो सकता।

हर मनुष्य के पास वह कान हैं जो युग की पुकार सुन सकें व जीवन को धन्य बनाने वाले अवसरों को पहचान सके। चाहे वह कृष्ण द्वारा रचित महाभारत हो या स्वतंत्रता आन्दोलन के लिये क्रांतिकारियों की मांग या युग परिवर्तन के लिये प्रज्ञा पुत्रों का आव्हान। इसे सुनते तो सभी हैं, किंतु यश केवल उन्हें ही मिलता है जो संकल्प पूर्वक उसमें अपनी भूमिका चुन लेते हैं। यदि संकल्प की खेती करना आ जाये तो उसमें से सिद्धि–विभूति उगाई जा सकती है। अनसुईया ने

अपने तपोबल से ही ब्रम्हा, विष्णु व महेश को बालक बना दिया था, इससे सिद्व होता है कि, वरिष्ठता देवताओं की नहीं आत्मबल की ही है।

मानव मन बड़ा ही शक्ति सम्पन्न है, वह जहाँ भी लग पड़े कमाल कर दिखाता है। यदि उसे संकल्प पूर्वक उच्च आदर्शो की दिशा में मोड़ सकें तो जीवन धन्य हो जायेगा। लोग सोचते हैं कि, सत्यवादिता व आदर्श मात्र सिद्धांतों का नाम है। ये मात्र कहे जातें हैं, किये नहीं जाते। आदर्शो के मार्ग में कठिनाईयां आती हैं, अतः उनसे बचकर ही रहा जाये। यह भी मात्र एक भ्रम है। कठिनाईयों के भय से श्रेष्ठ मार्ग छोड़कर कोई कष्ट से बचा नहीं है। इस जीवन की बनावट ही ऐसी है कि, किसी न किसी रुप में कठिनाईयां तो आती ही रहती हैं। संघर्ष तो जीवन का अंग है। आदर्शवादी मार्ग छोड़कर कोई कष्ट कंटकों से बचा हो ऐसा कोई भी उदाहरण नहीं है। भारतीय संस्कृति अपनों से बड़ों व हितैषियों की बात मानने की सलाह अवश्य देती है, किंतु वे प्रगति के मार्ग में बाधक बने तब उनका बिरोध करने का आदेश भी देती है।

ऐसीं जागरुकता जहाँ कहीं भी होगी, अनीति पनपने नहीं पायेगी। अनाचार से लोहा लेने में साधनों की अपेक्षा दृढ़ संकल्प–बल की ही अधिक आवश्यकता होती है। साधनहीन जटायु पराक्रमी रावण से लोहा लेता हुआ शहीद हो गया। सेना समेत भरत को आते देख केवट प्रतिरोध की तैयार करने लगा। राजा राममोहन राय ने अपनी भाभी को जबरन सती कराते हुये देख तुरंत सती प्रथा बन्द कराने का संकल्प ले लिया था, जिसमें उन्हें सफलता भी मिली।

मिलावटी खाद्य पदार्थ खाकर हम बीमार पड़े रहे, मिलावटी दवाईयां रोज सैकड़ों मासूमों की जान लेती रही, दहेज की बलिवेदी पर निरीह व निरपराध कन्यायें रोज चढ़ती रहीं। विवाहों के अपव्यय हमें आर्थिक रुप से दबोचते रहे। असामाजिक तत्व नाना प्रकार के भय दिखाकर मनमानी करते रहे, किंतु हम भाग्य की गोली खाकर सो जाने के अतिरिक्त कुछ न कर सके। धर्म के धंधाखोर लोग हमारी संस्कृति व देवताओं का अपमान करते रहे और हमारे मुर्दा दिलों में कसक भी पैदा न हो सकी। सीता को अपमानित देख बूढ़े जटायु का खून उबाल खा सकता है, किंतु हमारे रगो का खून जैसे पानी हो गया है, जो माँ, बहनों, बेटियों की खुलेआम इज्जत लूटते देख हम उन नाचीज छोकरों को सबक भी नहीं सिखा सकते।

आखिर यह सब क्यों ? उत्तर एक ही है, हमने आदर्श निष्ठा की बातें तो बहुत की किंतु उन पर संकल्प शीलता का पानी नहीं चढ़ाया। जब–जब नियम पालन की बात आई हमने मन की

दुर्बलता पर पर्दा डालने के लिये तमाम तर्क खोज डाले, इससे क्या फायदा ? कहकर अपना पल्ला बचाते रहे। वस्तुतः हमने व्रतशीलता का वरण नहीं किया तो उत्कृष्टता भी हमारा वरण न कर सकी।

वास्तव में व्रतशीलता मनुष्य के अंदर दृढ़ता उत्पन्न करती है, तब उसकी सोई शक्तियां जागृत हो जाती है और मनुष्य दृढ़तापूर्वक संकल्प पूर्ण करता, शंखनाद करता चला जाता है। शक्तियां व सिद्धियां व्रतशीलता को ही प्राप्त होती है। चिन्ह पूजा से व्यर्थ ही समय, शक्ति व ज्ञान का ह्रास होता है, अतः निराशा ही हाथ लगती है। जब तक हम लम्बे समय तक अपने अंदर बाहर की रुकावटों को संकल्प पूर्वक रोक नहीं देते तब तक दुर्लभ कहे जाने वाले कार्य व सिद्धियां हमारी झोली में नहीं डाली जा सकेंगी। संकल्पों को विस्मरण नहीं होने देना चाहिये। इसके लिये चाणक्य की चोटी की गांठ व द्रोपदी के खुले केश की भांति दूसरा मार्ग भी हम अपना सकते है। परशुराम ने भी अपने कुल्हाड़े का प्रयोग लम्बे समय तक अनीति के विरोध में किया था व संकल्प पूर्ण होते ही अपने उसी पराक्रम को, वृक्षारोपण की दिशा में बदल दिया।

अतः जागृत आत्माओं से पुनः आव्हान है कि, वे व्रतशीलता का पालन करते हुये आगे बढ़े। स्वयं प्राणवान बने व जागृति का शंखनाद करते हुये देवभूमि, ऋषिभूमि भारत को एक बार पुनः ''जगतगुरु'' व सोने की चिड़िया बना दें।

डॉ. श्रीमति कुसुम गुप्ता,
21, गायत्री नगर, ग्वालियर

♦ ♦ ♦ ♦ ♦